International Journal of Applied Research 2023; 9(3): 190-192

International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 8.4
IJAR 2023; 9(3): 190-192
www.allresearchjournal.com
Received: 05-02-2023
Accepted: 10-03-2023

डॉ0 कुमारी पुनम राय
अतिथि सहायक प्राध्यापक,
डी0 बी0 के0 एन0 कॉलेज,
नरहन, समस्तीपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ0 कुमारी पुनम राय
अतिथि सहायक प्राध्यापक,
डी0 बी0 के0 एन0 कॉलेज,
नरहन, समस्तीपुर, बिहार, भारत

रस के भेद

डॉ0 कुमारी पुनम राय

प्रस्तावना

रस शब्द का अर्थ : चुरादि गण के आस्वादनार्थक रस धातु से घञ् प्रत्यय लगाकर रस शब्द बना है। 'रस्यते आस्वाद्यते' यह इसकी विरक्ति है अर्थात जिसका अस्वादन की किया का इस दृष्टि से स्थूल जगत के समस्त भोग्य विषयों को पांच श्रेणियों में रखा गया है उनमे एक रस है। अमरकोष में कहा गया है –

रूपं शब्दो गन्धरसस्पर्शाश्चि विषय अमी गोचर इन्द्रियार्थाश्च (1.5.7)

मेदिनीकोष में रस के निम्नलिखित अर्थ बताए गए है– गन्ध जल श्रृंगार, विष, वीर्य, तिक्त आदि जिह्वा से अस्वाद रस, द्रय तथा राग में हैम वे मधुर को रस का एक पर्याय माना है। (है० 622–24) अंको में पारद (2.999) तथा श्रृंगार आदि विष, वीर्य, गुण राग और द्रव इन अर्थों में भी 'रस' शब्द को स्वीकार किया है। (3.3.228) इसके अतिरिक्त किसी वस्तु का निर्यास या निचोड धृत, हिंडुल (वैद्यक शास्त्र में) तैल विशेष आदि भी इसके अर्थ किये गये है।

शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथ गन्ध– ये पाँच विषय आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी– इन पाँच महाभूतों से संबद्ध है। रस का संबंध जल से है अतः जल के अर्थ में रस का उपचरित प्रयोग किया गया ऐसा प्रतीत होता है। ताण्डय ब्राह्मण में औषधियों के सार के अर्थ में 'रस' व्यवहृत है।

अर्थशास्त्र में 'रस' शब्द का प्रयोग विष के अर्थ में हुआ है तथा मदन रस का मादक विष के अर्थ में। अर्थशास्त्र के परंपरा में ही मुद्रा राक्षस नाटक के लेखक ने विष के अर्थ में रस का प्रयोग किया है–

'ये मन्त्रेषु रसेषु च प्रणिहितास्तैरैव ते घातिताः।'

जबकि कालिदास ने वैदिक और औपनिषदिक वाङ्मय की परंपरा में 'रस' शब्द को 'जल' के अर्थ में भी प्रयोग किया गया है–

प्रजानामेव गूत्यर्थ स ताम्यो बलिगग्रहीत्।
सहयगुणमुत्यष्टुमादत्ते हि रसं रविः।।
तथा न्यस्तक्षराधातुरसेन यत्र–

पर इन तीनों रचनाकारों ने निचोड़ सार के अर्थ में भी रस शब्द का प्रयोग किया है। परायत्तः प्रीतेः कथमिव रसं वेत्तु पुरुषः रस शब्द का काग या इच्छा के अर्थ में प्रयोग कालिदास ने किया है–
'इष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशी भवन्ति।' (मेघदूत)
रस का अर्थ आन्नद प्रेम या सुख भी इन कवियों ने लिखा है, वैशेषिक दर्शन में रस 24 गुणों में से एक माना गया है, तर्क भाषा के अनुसार रसना (जिह्वा) से ग्राह्य गुण रस है। विश्वनाथ ने रस का निरुपण आयुर्वेद के आधार पर किया है।

रसस्तु रसनाग्राह्यो मधुरादिरनेकधा।
सहकारीरसज्ञाया नित्यत्वादि च पूर्ववत्।।

मुक्तावली के अनुसार जल मे रहने वाला रस नित्य है, शेष नित्य है शाक्त तंत्रों में मधुरादि षड्रसों का छः ऋतुओं से अमेद माना गया है। (भावनोपनिषत – 6) तथा नियति– सहित श्रृंगारादि नवरसों का अणिमादि दश सिद्धियों से (वही 11) तन्त्रराज में कहा गया है–

श्रीचक्रे सिद्धयः प्रोक्ता रसा नियतिसंयुक्ता।
ऊर्मयः पुण्यपापे च ब्राह्मयाद्या मातरस्स्मृताः।।
(भावनोपनिषत् के भास्करराजकृतभाष्य में उ०)

सारभूत जीवनदायक तत्व होने के करण तन्त्र में पारद को भी रस कहा गया तथा वीर्य को भी और शिव पार्वती के महामैथुन से इसकी उत्पत्ति मानी गई। रसार्णव में भैरव कहते है–

त्वं माता सर्वभूतानां पिता चाहं सनातनः।
द्वयोश्च यो रसो देवि महामैथुन सम्भवः।।
स्वैरतः सम्भवाद् देवि पारदः कीर्तितो महः।
सूतोऽयं मत्समो देवि मम प्रत्यङ्गमम्भवः।
मग देहरसो यस्मात् रसन्ते नायमुच्यते।।

शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी मे रस की एक कोटि परानन्द मानते हुए भगवती की भक्ति करने वाले को इसके आस्वाद की प्राप्ति बतायी है –

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा।
चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः
परानन्दामिख्यां रसयति रसं त्वद्मजनवान्।।

चरक ने जल तथा पृथ्वी को रस का उपादान माना है–

रसनार्थो रसस्तस्य द्रव्यमाणः क्षितिस्तथा।
निर्वृत्तौ विशेषे च प्रत्ययाः खद्यस्त्रयः।।
(चरक सूत्रस्थान 64)

आयुर्वेद में रस को पंच महाभूतों से संबद्ध करते हुए मधुर आदि छः प्रकारों मे विभक्त माना जाता है–

''अथातो रसविशेषविज्ञानीयमध्यायं आकाशपवनवहनितोयभूमिषु शब्दस्पर्शरूपसरगन्धाः। तस्मादाप्यो रसः परस्परसंसर्गात् परस्परानुप्रवेशाच्च सर्वेषु सर्वेषां सानिध्यमस्त्युत्कर्षापकर्षात खल्वाप्यो रसः शेषभूतसंसर्गाद् विभक्तः षोढ़ा विभज्यते। तद् लवणः कटुकस्तिक्तः कषाय इति ते च भूयः परस्परसंसर्गात।''

इस प्रकार कटु अम्ल कषाय तिक्त लवण और मधुर ये पंचभूतों के अनुप्रवेश संसर्ग और प्राधान्य से बनते है। जैसे– गुणों की प्रधानता से मधुर भूमि अग्नि के गुणों से अम्ल आदि संसर्ग से 63 प्रकार का रस हो जाता है।
चरक की चक्रपाणिदत्त – कृत शिवदासीया टीका मे यही लक्षण दिया गया है, पर रस के संसर्गजनित भेद 57 है। सुश्रुत ने रस का स्वाद या अस्वाद अर्थ भी लिया है, क्योंकि रस से अनुमान होता है कि द्रव्य मधुर या कटु है– अनुमानाच्य रसेन ह्यनुमीयते द्रव्यं यथा मधुरमिति (सूत्रस्थान, 3040)।
सारभूत, जीवनदायक तत्व होने के कारण तन्त्र में पारद को भी रस कहा गया तथा वीर्य को भी और शिव–पार्वती के महामैथुन से इसकी उत्पत्ति मानी जाती गई। रसावर्ण मे भैरव कहते हैं–

त्वं माता सर्वभूतानां पिता चाहं सनातनः।
द्वयोश्च यो रसो देवि महामैथुन– सम्भवः।।
स्वैरतः सम्भाद् देवि पारदः कीर्तितो महः।
सूतोऽयं मत्समो देवि मम प्रत्यङ्गमम्भवः।
मगदेहरसो यस्मात् रसस्तेनायमुच्यते।।

शंकराचार्य ने सौन्दर्यलहरी में रस की एक कोटि परानन्द मानते भगवती की भक्ति करने वाले को इसके अस्वाद की प्राप्ति बतायी है–

सरस्वत्या लक्ष्म्या विधिहरिसपत्नो विहरते
रतेः पातिव्रत्यं शिथिलयति रम्येण वपुषा।
चिरं जीवन्नेव क्षपितपशुपाशव्यतिकरः
परानन्दामिख्यां रसयति रसं त्वद् भजनवान्।।

चरक ने जल तथा पृथ्वी को रस का उपादान माना है –

रसनार्थो रसस्तस्य द्रव्यमाणः क्षितिस्तथा।

ऋग्वेद मे तीन स्थलों पर नदी की एक धारा के अर्थ मे रस शब्द व्यवहृत है। (1112,12 4536, 10756) तथापि काव्य या सूक्त के सारभूत तत्व के अर्थ में ऋग्वेद के सोमसूक्त में रस प्रयुक्त है–

पवनीयो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिः मधूदकम।। (6.67.32)

यहाँ 'रस' का सम्बन्ध सरस्वती से भी जोड़ा गया। उपनिषदों में रस की अवधारणा को पल्लवित कर जीवन के परमतत्व के अर्थ मे निरूपित किया गया है तथा आनन्द से इसका अविभाज्य सम्बन्ध स्वीकार किया गया है –

रसो वै सः। तलंबध्वा आनन्दीभवति। रसो वै आनन्दः। (तैत्ति० उ०प० 2.6.1)

उपर्युक्त विवेचन से रस के विषय मे दो अवधारणाएँ सामने आती है। एक एक मे वह किसी भी पदार्थ का निचोड़ या सार है जिसमे आस्वाद्यता या आनन्द प्रदान करने की क्षमता है। इसी से जुड़कर दूसरी अवध रणा आती है, जो रस को आस्वाघ– रस या आनन्दरूप अपूर्व तत्व के रूप में देखती है। रसात्मक तत्व के ये दो पक्ष कहे जा सकते हैं और रस की यह द्विपक्षीय धारण नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र में भी संक्रांत हुई। काव्य या नाट्य के क्षेत्र में रस रस शास्त्र के प्रवर्तक आचार्य भरत ने (6.16) आठ रसों का निरूपण करने वाले अपने पूर्ववर्ती आचार्य दुहिण का उल्लेख किया है। भावों से रसनिष्पति की प्रक्रिया वासुकि नामक आचार्य ने समझाई थी इसका उल्लेख शात ने किया है–

नानाद्रव्यौषधेः पाकैर्व्यजनं माय्यते यथा।
एते भावा भावयन्ति रसानभिनयैः सह।
एते भावा भावयन्ति रसानभिनयैः सह।
इति वासुकिनाप्युक्तो भावेभ्यो रससंभवः।

रसोत्पत्ति के विषय में उन्होंने वासुकि के साथ नारद भी स्मरण किया है–

उत्पतिस्तु रसानां या पुरा वासुकिनोदिता।
नारदस्य मते सैषा प्रकारान्तरकल्पिता।।

18 अधिकरणों वाली काव्यविद्या के रसाधिकरण का प्रवर्तक आचार्य नन्दी को बताया गया है।
रसनिष्पत्तिविषयक प्रसिद्ध सूत्र विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पतिः को मम्मट आदि आचार्यों ने भरत बताया है।

दृश्यकाव्य के तीन भेदक में एक 'रस' भी है। रस का सामान्य अर्थ कहना चाहेंगे कि काव्य के पठन, श्रवण या दर्शन से जिस आनन्द का अनुभव हमें होता है, वही आनन्द 'रस' कहलाता है। इस रस की उत्पत्ति विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी भाव के संयोग से होती है।

स्थायी भाव

'भाव' ही रस का बीज है। स्थायी भाव रस सामग्री के अन्तर्गत आते हैं। स्थायी भाव ही सहृदय सामाजिको में पहले विद्यमान रहता है। तथा संस्कार रूप होने से हर प्राणी के अन्दर स्थायी रूप से अवस्थित रहता है। स्थायी भाव जन्मजात है ये कभी नष्ट नहीं होते है, ये विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों में परिणत हो जाते हैं।

भरत स्थायीभावों की महत्ता बताते हुए कहते हैं कि जैसे बड़े परिवार से युक्त होने पर भी केवल राजा का ही नाम रहता है उससे बड़े (कुटुम्बीजन) का भी नाम नही रहता। वैसे ही विभाव, अनुभाव तथा संचारी भावों से युक्त स्थायीभाव ही नरेन्द्र के समान रस दशा को प्राप्त करता है।

यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरूः।
एवं हि सर्वभाव नं भावः स्थायी महानिह।।

दशरूपक में धनंजय ने स्थायीभाव का लक्षण यह दिया है–

विरूद्धैरविरूद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः।
आत्मभावं नयत्यन्यान् स स्थायी लवणाकरः।।

स्थायीभाव उस समुद्र के समान है जिसके अन्तर्गत कोई भी खारा या मीठा पानी मिलकर तद्रूप हो जाता है। समुद्र समस्त वस्तुओं को आत्मसात् करके, आत्मरूप बना लेता है। वैसे स्थायी भाव भी बाकी सभी भावों को आत्मरूप बना लेता है। धनिक इसी बात को अपनी वृत्ति में स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि वह भाव रत्यादि जो सजातीय–विजातीय अन्य भावों से तिरस्कृत नहीं हो पाता, स्थायी भाव कहलाता है।

दशरूपककार आठ स्थायीभावों को मान्यता देते हुए कहते हैं कि रति, उत्साह जुगुप्सा, क्रोध हास, स्य, भय तथा शोक आठ ही स्थायी भाव होते है। कुछ आचार्य शम जैसे नवें स्थायी भाव को भी मानते हैं, किन्तु इस भाव की पुष्टि नाट्य मे नहीं होती। धनंजय के अनुसार यह भाव नाट्यानुकूल नही है। अतः नक्शास्त्र की दृष्टि से स्थायी भाव केवल आठ ही है।

सन्दर्भ

1. हलायुधकोशः पृ० 56
2. न्यायकोश पृ० 683
3. मेघदूत पृ० 209
4. रसार्णव 5–6
5. मा० प्र० अ० 2; पृ० 36–37
6. भा प्र०, अधि० 2, पृ० 47
7. कामी – 1; पृ० 1
8. ना. शा. 7.8
9. द.रू., 4.34
10. 4.35 द.रू., 36